मंदिर जहां जाना मना था.....

लेखिका और वैज्ञानिक टी. वी. पद्मा की बेहतरीन किताब 'द फॉरबिडन टेम्पल' की कहानियों में से

चित्रांकन: वैमसी बन्डारू

लगभग 700–900 सदी

तुम्हें कैसा लगेगा यदि तुमसे कोई कहे कि तुम नीच पैदा हुए हो? या फिर तुम्हारी जाति के कारण तुम्हारे छूने से कोई चीज़ 'गंदी' या 'अशुद्ध' हो जाएगी? यहां तक कि किसी पूजास्थल पर भी तुम्हारे साथ कुछ अलग सा बर्ताव किया जाए? दुर्भाग्यवश इतिहास के कई युगों में अनेक लोगों के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण रहा है, जो आज तक ज़ारी है।

पर इस भेदभाव को सभी लोगों ने स्वीकार नहीं किया और कुछ ने उस पर सवाल उठाने का साहस भी किया–जैसे कि इस कहानी में वेनिल करती है। उन्हें भक्ति आंदोलन के उन संतो और विचारकों जिनमें स्त्री व पुरुष दोनों थे से सम्बल मिला, और जो यह मानते थे कि चाहे जाति या धर्म कुछ भी हो, सब बराबर हैं।

शोख नीले और पन्ने वाले हरे रंग के तार आपस में गुंथकर जामुनी आभा दे रहे थे। वेनिल अपने माता पिता को साथ बैठकर उस बड़े से करघे पर उंगलियों और पैरों से काम करते देख रही थी। जो साड़ियां वे बुन रहे थे वो उतनी ही चटकीली थीं जितना उस सीलन भरे कमरे की छोटी सी खिड़की से दिखता आकाश का चौकोर टुकड़ा। एक घने सुनहरे फुंदने की तरह धूप की एक किरण अंदर बहकर आ रही थी। वेनिल को ऐसा लगता था जैसे उसके पिता अपने करघे पर कभी कभी रोशनी को ही धागों में बुन देते थे। काम से खुरदुरी हुई उनकी उंगलियां मुलायम से मुलायम रेशम बुनती थीं। उनके वस्त्र प्रसिद्ध थे। वे कभी पिघली धातु की तरह धनी आदमियों के कंधों पर चमकते थे, तो कभी झिलमिलाते झरनों की तरह वे कुलीन स्त्रियों की कमर पर लहराते थे। कभी कभी वे ऐसे अदभुत छोटे वस्त्र भी बनाते थे जिन्हें चुन्नटें डालकर देवालय के उन देवों को पहनाया जाता था जिन्हें वह और उनका परिवार कभी देख भी नहीं सकेगा।

''वेनिल!'' हवा से रहित कमरे में उसके पिता की आवाज़ भर गई।

''वेनिल!''

‘‘आई, अप्पा!’’
वो भागकर उनके पास पहुंची, पर कच्ची मिट्टी के फर्श पर उसके नंगे पैरों से कोई आहट न हुई।
‘‘क्या अप्पा, आपको पानी चाहिये?’’
उन्होंने न में सिर हिलाया।
‘मैं कुछ सोच रहा था वेनिल। तुम अक्सर काम में मेरी मदद करती हो। शायद अब तुम्हें खुद एक वस्त्र बुनना चाहिये। कुछ आसान सा, पर उपयोगी। सिर्फ अभ्यास के लिये नहीं। तुम क्या बनाना चाहोगी?’ उत्तर में वेनिल ने चौड़ी सी मुस्कान दी। उसकी अपनी रचना! उसने करघे को देखा, यह तय करने के लिये कि वह क्या बुने।

उसकी मां के पास दो ही साड़ियां थीं जिन्हें वे बारी बारी से पहनती थी। उनमें से एक तो लगभग पूरी तरह छीज चुकी थी। क्या वो मां के लिये सूती साड़ी बुने। या फिर अपने पिता के लिये एक नई सफेद वेष्टि (लुंगी)? उसके पिता की सारी वेष्टियां तो पुरानी होकर पीली पड़ गई थीं और कहीं कहीं तो उन पर भूरे दाग भी पड़ गए थे। कुछ समय तक वह दुविधा में पड़ी रही। वह फैसला नहीं कर पा रही थी।
तभी एक और बिल्कुल दूसरी सम्भावना उसके दिमाग में आई। क्या वह इतना साहस करे कि स्वयं देवी पार्वती के लिये साड़ी बुने?

उसके मन में रेशमी आवरण में लिपटी देवी की छवि उभरी। कैसे गिरेगा देवी के चरणों में वह रेशमी वस्त्र जिसे उसके अपने हाथों ने छुआ होगा और उसकी किनारी को बड़े आदर से सहलाया होगा?
‘अप्पा, क्या मैं देवी पार्वती के लिए एक साड़ी बुन सकती हूं ? एक रेशमी साड़ी ?’
अप्पा उसे देखकर मुस्कुराए। हालांकि वह थोड़ी खिंची हुई मुस्कुराहट थी। ‘वेनिल, वेनिल! हमेशा ऊंची उड़ान भरती हो। मैंने सोचा
था कोई छोटी सी चीज़ बनाएंगे। पर तुम तो देवी के चढ़ावे से ही शुरुआत करना चाहती हो। पर मैं ऐसा अनुरोध कैसे टाल सकता हूं? हम दोनों मिलकर अवश्य हीएक साड़ी बना सकते हैं लेकिन रेशम की नहीं क्योंकि

मंदिर या किसी भक्त ने हमें यह काम नहीं दिया है। हमारे पास रेशमी धागे के लिए पर्याप्त धन नहीं है इसलिए हमें तो सूती ही बुननी होगी।
उन्होंने गहरी सांस ली! 'उससे क्या फर्क पड़ता है, अप्पा? मैं चाहती हूं कि अपने हाथों से बुनी हुई साड़ी खुद देवी मां को भेंट करूं। बस इतना ही।'
उसके पिता ने फिर उसांस भरी।
'जैसी तुम चाहो वैसी ही साड़ी बनाएंगे, लेकिन तुम जानती ही हो कि तुम स्वयं उसे देवी को अर्पित नहीं कर सकती। तुम ऐसी नामुमकिन बातें क्यों करती हो?' उन्होंने लाचारी से अपनी बेटी के चेहरे पर आई चिरपरिचित ज़िद को देखा।
वेनिल ने शिकायती नज़र से खिड़की से बाहर देवालय के नक्काशीदार गोपुरम को देखा। वह गांव के ऊपर पर्वत शिखर के समान छाया हुआ था अपनी ताकत का भरोसा दिलाते हुए। उसकी बड़ी तमन्ना थी कि वो मंदिर के अन्दर गहरे जाकर दीवारों पर तराशी गई नक्काशी को देख सके, सैंकड़ों दीयों की आभा से दीप्त देवी की एक झलक देख सके। पर उसे हमेशा बतया गया था कि वह एक जुलाहे की बेटी है। वे लोग शूद्र हैं, नीची जाति के, मंदिर के बाहरी घेरे तक ही जाने लायक हैं। हर बार जब वह बाहर खड़े होकर ऊंची जात वालों को अन्दर जाते देखती थी, ठीक भीतरी गर्भगृह तक, जहां वे उसके अपवित्र स्पर्श से दूर देवी का प्रसाद प्राप्त करते थे, उसे कितना गुस्सा आता था।
''वेनिल'' अप्पा ने उसे अपने करीब खींचा। ''तुम जानती हो न कि हमारा देवी तक पहुंचना वर्जित है।''
''किसने वर्जित किया है? देवी ने?'' वेनिल ने तीखे स्वर में जवाब दिया।
''नहीं, वेनिल, ये नियम तो इन्सान ने बनाए हैं। मैं तुम्हें पहले भी बता चुका हूं। जिस श्रद्धा से तुम देवी पर साड़ी चढ़ाओगी, वह उन अमीर लोगों की आस्था से कहीं ज्यादा होगी जो बहुमूल्य चढ़ावा चढ़ाते हैं। अगर मेरे बस में होता तो मैं अंदर घुस कर पुजारी को आदेश देता कि हमें देवी की प्रतिमा तक जाने दे। पर मैं ऐसा नहीं कर सकता। वे मुझे बाहर फेंक देंगे, और हो सकता है कि फिर कभी मंदिर में घुसने तक न दें।''

सुबकती हुई वेनिल को गले में आंसू चुभते हुए महसूस हुए। उसने थूक निगला और एक पल को चुप हो गई। फिर गुस्से से फूट पड़ी, ''यह ठीक नहीं है। मैं जाऊंगी। कोई मुझे रोक कर दिखाए।''
उसकी मां ने पास आकर उसके बाल सहलाए। ''शांत हो जाओ, वेनिल। गुस्से से कोई फायदा नहीं, न कुछ बदला जा सकता है। बुनना शुरू करो। तुम बेहतर महसूस करोगी। फिर हम देखेंगे कि साड़ी का क्या करना है।''

वेनिल ने मां का हाथ हटा दिया।
''तुम्हारी मां ठीक कहती है,'' उसके पिता ने कहा, ''चलो शुरू करें, इतनी सुन्दर साड़ी बनाएं कि देवी उसको पहनने के लिये लालयित हो उठे। और फिर क्या पता वह क्या करे? कुछ नया शुरू करने के लिये आज का दिन बहुत अच्छा है। जरा देखूं तो कौन सा धागा मिलता है।''
''हरा या लाल,'' दो फिरकियां उठाकर उसकी मां ने पूछा, ''देवी की साड़ी किस रंग की होनी चाहिये, वेनिल कन्ना (मुन्नी)?'' इस प्रश्न पर सोचते हुए वेनिल का मन काफी हद तक अच्छा हो गया। लाल तो वैसे ही बड़ा खुशनुमा रंग है, गुड़हल के फूल का रंग, जिसे वो कभी कभी बाहर झाड़ी से तोड़कर अपने बालों में लगाती है। पर हां, उसे तो हरा रंग भी अच्छा लगता है, ताड़ के सरसराते पत्तों जैसा, या फिर सुंगधित नीम जैसा।

''मैं तय नहीं कर पा रही,'' उसने कहा, ''अगर मैं साड़ी के बीच में दोनों रंगों को बुन दूं और उसकी किनारी लाल बनाऊं, तो?''
उसके माता पिता ने एक दूसरे को देखा और हामी भरी। उन्हें अभी से दिख रहा था कि पूरी होने पर साड़ी कैसी दिखेगी। आपस में गुंथे हुए रंगों पर जब रोशनी खेलेगी तब रंग बदलते हुए नज़र आएंगे।

करघा लगा दिया गया और वेनिल ने अपना काम शुरू कर दिया। वह पूरे छ: गज बुनेगी क्योंकि मंदिर की मूर्ति

इतनी बड़ी है कि एक पूरी साड़ी की लम्बाई लग जाएगी। कभी कभी उसकी मां या पिता उसकी मदद करते, पर ज्यादातर वे ऐसे कामों में व्यस्त होते जिनसे कमाई होती थी, इसलिये वेनिल अक्सर अकेले लगी रहती थी।

''तुम्हें बाहर जाकर ताज़ी हवा खानी चाहिये, कन्ना,'' उसकी मां उसे याद दिलाती और उसे छोटे मोटे काम बता देती जिससे वह उस गर्म कमरे से बाहर जा सके।

वेनिल जितनी जल्दी हो सके वापस आ जाती और फिर हताशा से उस धागे को देखती जिसे बुनना बाकी था। कभी कभी उसे ऐसा लगता कि साड़ी कभी पूरी ही न होगी। पर एक दिन आया, जब वह पूरी हो गई। उसके माता-पिता ने उसे करघे से निकालने में मदद की और उसके सिरे दोनो ओर से पकड़ लिये। चटख लाल-हरी साड़ी दोनों के बीच झिलमिला रही थी।

''हमारा सबसे सस्ता धागा था और तुमने ऐसे बुना, कि महंगा रेशम सा दिख रहा है।'' उसके पिता ने गर्व से कहा। वेनिल ने उसे काफी देर तक देखा, फिर उसमें साफ चौकोर तह लगा कर अपनी मां को दे दिया।
''मैं कुछ देर बाहर घूम आने का सोच रही हूं अम्मा।''
''आखिरकार'' मां मुस्कराई।

वेनिल उस घुटन भरी झोंपड़ी से बाहर निकली और अपनी बुनी साड़ी के बारे में सोचने लगी। हां, अप्पा ठीक कहते हैं। उसने बहुत अच्छा काम किया है और उसे अपने पर गर्व होना चाहिए। पर उसे जो महसूस हो रहा था, वह गर्व नहीं था। अब जबकि काम पूरा हो गया था, उसका मन उस कारण पर लौट आया था, जिसके लिए उसने इतनी मेहनत की थी। क्या जिस मनोकामना को पूरी करने के लिए उसने इतनी मेहनत की है, कभी पूरी नहीं होगी?

नीम के पेड़ की छाया में बैठकर उसने यह कल्पना करने की कोशिश की कि देवी उसकी बुनी साड़ी में कैसी दिखेगी, पर कितना कठिन था यह! उसने अब तक प्रतिमा का एक छोटा सा प्रतिरूप ही देखा था, देवी की ग्राम परिक्रमा के समय, वह भी दूर से और लोगों की
धक्का-मुक्की के बीच में। देवी के नैन-नक्श कैसे होंगे, इसकी तस्वीर तो उसे कल्पना में ही पूरी करनी थी। अचानक उसे बड़ी गहरी और उत्कट इच्छा हुई, उस भेंट को अर्पित करने की, जिस पर उसने कड़ी मेहनत की थी। यह बिल्कुल जायज़ नहीं है!

''क्या बात है बिटिया? ऐसे आंसू क्यों?''
वेनिल ने अपने कंधे पर एक प्यार भरे स्पर्श की नर्म गर्माहट महसूस की। उसे तो पता भी नहीं चला था कि कब आंसू उसके गालों पर ढुलक आए थे। उसका सामना ऐसी नर्म आखों से हुआ, जैसी उसने पहले कभी नहीं देखी थीं। बिल्कुल नए जन्मे बछड़े की तरह मासूम, उत्सुक, विश्वास से भरी। इतना ही नहीं, वे उसकी कल्पना की देवी की आंखों सी भी लग रही थी, समझ से भरी, स्नेहमयी और दयामय।

एक स्त्री अपनी भगवा साड़ी के छोर से उसके आंसू पोंछ रही थी। ऐसा नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता! भगवा रंग, एक साध्वी! वह उससे कितने प्यार से बात कर रही थी, कितनी कोमलता से पकड़कर छू रही थी। कहीं यह सपना तो नहीं?

''मैं-मैं-मैं एक जुलाहे की बेटी हूं'' वह हकलाने लगी। ''तुम्हारा नाम क्या है, बिटिया?''
''मैं-मैं-मैं एक शूद्र हूं, स्वामिनी!'' ''मेरी बच्ची, मैंने तुम्हारा नाम पूछा है, तुम्हारी जाति नहीं ।'' ''क्या? आप कौन हैं?''
''मैं एक सन्यासिनी हूं, जैसा कि तुम देख सकती हो। मैंने इस संसार का त्याग कर दिया है, साथ ही इसकी मान्यताओं और रीति रिवाजों का भी। ईश्वर तुम्हारी जाति नहीं देखता, मेरी बच्ची, और न ही मैं देखती हूं।''

'ईश्वर वाकई जाति नहीं देखता?'

''बिल्कुल नहीं देखता, बिटिया, सच! मैंने शास्त्रों का अध्ययन किया है और वे ये जाति भेद नहीं बताते। ईश्वर तुमसे उतना ही प्रेम करता है, जितना कि किसी ब्राह्ममण की बेटी से यह तो मैं जानती हूं। अब यह बताओ तुम रो क्यों रही हो?''

वेनिल ने पाया कि वह सारी की सारी बात सन्यासिनी को सुनाने लगी है। और भी बहुत कुछ। उसके अंदर का सारा गुबार जैसा फट पड़ा। अगर उसे मंदिर के भीतर जाने की
इच्छा है, तो वह क्यों नहीं जा सकती? अगर देवी को इस पर कोई आपत्ति नहीं, तो कोई क्यों रोकने की हिम्मत करता है? ऐसा क्यों है कि ऊंची जाति के लोग जुलाहों द्वारा बनाए गए कपड़े तो पहन सकते हैं, पर खुद जुलाहों को नीचा समझ कर उनसे घुलना-मिलना नहीं चाहते? वह क्यों गंदी है? उसके माता पिता और मित्र भी क्यों गंदे हैं? ऐसा क्यो हैं कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की संताने वे सब चीज़ें कर सकती हैं, जो वो नहीं? लोगों के बीच में यह अंतर क्यों हैं?

वह पूछती रही और सन्यासिनी धीरज से सुनती रही। फिर उसने उत्तर दिए और वही बातें कहीं, जिनकी सच्चाई वेनिल अपने हृदय में पहले ही जानती थी। सन्यासिनी ने धर्म और ईश्वर के बारे में बिल्कुल अलग तरह से बात की। वेनिल यह नहीं तय कर पाई कि उसे सब समझ में आया है या नहीं, पर उसने महसूस किया कि उसके विचार ऐसी ऊंचाइयों तक पहुंचे जहां वे पहले कभी न पहुंचे थे। उसके मन में एक गहरी शांति भर गई। उनकी बातों में समय तेजी से बीतता गया और सूर्य आसमान में ऊपर, और ऊपर उठता गया।

अंततः स्वामिनी ने कहा-''आओ कन्ना, अब हम घर चलें। हम नहीं चाहते कि तुम्हारे माता-पिता चिंतित हो जाएं।''

वेनिल ने स्वामिनी का हाथ अपने हाथ में ले लिया। वह रूखा और सख्त था पर उसका स्पर्श स्नेहिल और कोमल था। वे दोनों वेनिल की झोंपड़ी की तरफ चल पड़े।

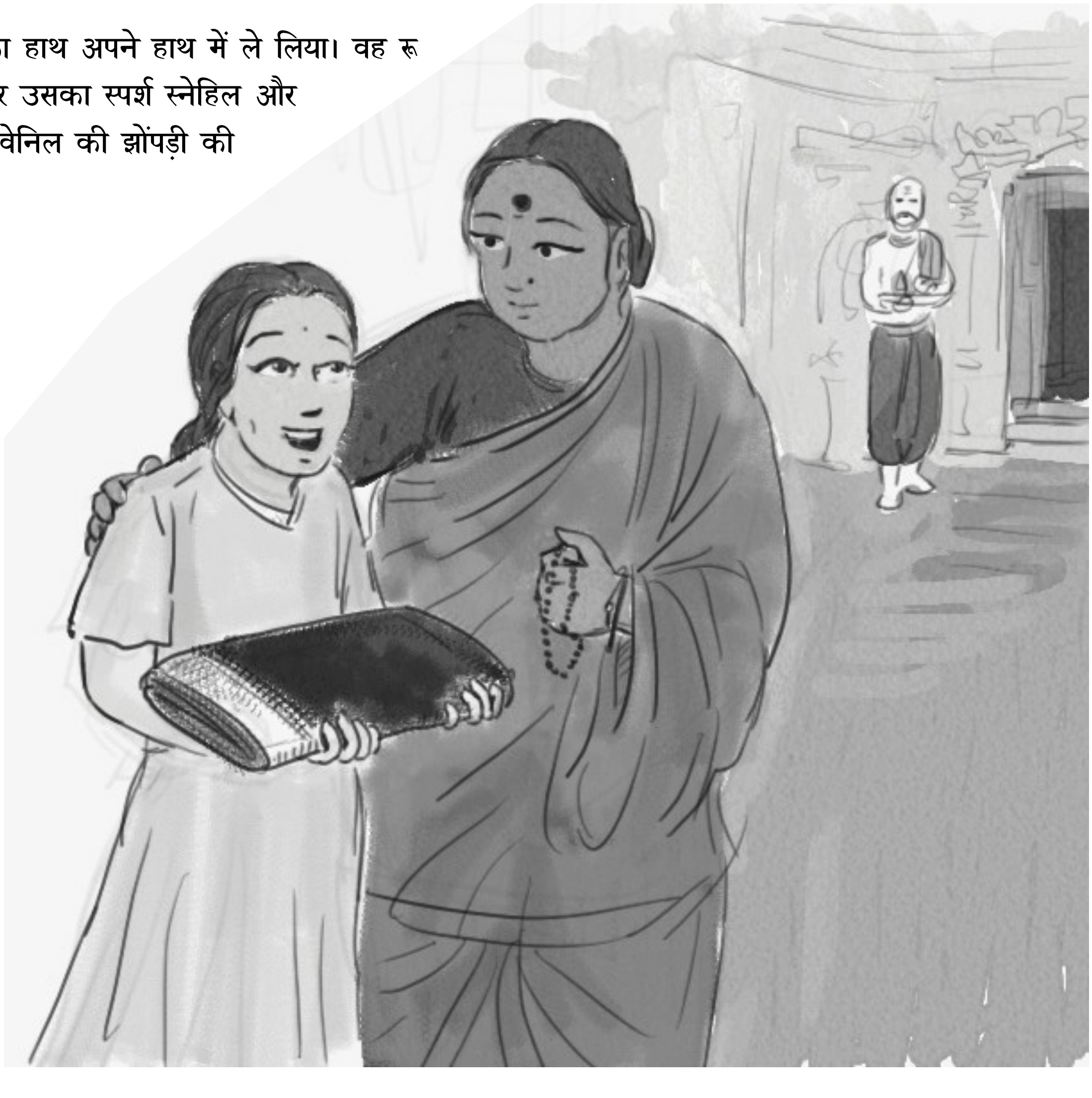

उसके माता पिता ने जब उसकी संगिनी को देखा तो उनकी हैरानी का ठिकाना न रहा। वे अपने टूटे-फूटे घर के लिये क्षमा मांगने लगे, पर सन्यासिनी ने केवल यह कहा कि ईश्वर सर्वव्यापी है, और गरीबों के घरों में अमीरों से कम नहीं बसता।

वेनिल देख सकती थी कि उसके माता-पिता प्रसन्न थे क्योंकि उन्होंने अपनी निर्धनता को कभी भी शर्मिन्दगी की बात नहीं समझा था। उसने अपनी मां को दोपहर का भोजन बनाने में मदद की। स्वामिनी ने उनका सादा सा भोजन खाया, और ऊपर किसी ऊंचे आसन पर बैठने की बजाय वह ज़ोर देकर उनके साथ पालथी मारकर ही बैठी। भोजन भी उसने उनके साथ ही खाया, पहले नहीं और तब वेनिल के मां-बाप ने स्वामिनी से कई सारे प्रश्न पूछे। वे भी जो वेनिल ने पूछे थे। उस शाम स्वामिनी एक बरगद के वृक्ष के नीचे बैठी और जल्दी ही उनसे बात करने दर्जनों लोग इकट्ठे हो गये। उसके अंदर कोई दिव्य आभा लोगों को अपनी ओर खींचती थी और उनके दिलों को आहलाद से भर देती थी।

रात में वह वेनिल के घर में फूस की चटाई पर सोई, और उसने वेनिल के माता-पिता को उनकी आवभगत के लिये धन्यवाद दिया।

अगली सुबह, जब सुबह की पहली किरण फूस के छप्पर के अंदर घुसकर बड़े करघे पर पड़ी, वेनिल ने उठकर अपनी चटाई लपेटी। बाहर नारियल के पत्ते सरसरा रहे थे और झोपड़ी के अन्दर नीम की कड़वी-मीठी महक के साथ हवा आ रही थी। वेनिल जल्दी से नहाई। उसे आभास हो गया था कि यह उसके जीवन का बहुत विशेष दिन होने वाला है।

बाद में उसे बहुत ही कम याद रहा कि उस दिन सुबह सवेरे क्या क्या हुआ था। धुंधली सी याद की तरह सब भूल गया। लेकिन जिस क्षण से स्वामिनी ने उससे एक प्रश्न पूछा उसके बाद का सब शीशे जैसा साफ याद है।

''वह साड़ी मेरी बच्ची, जो तुमने देवी के लिये बुनी थी। कहां है वह?''
वेनिल उसे ले आई। बाकी उस दिन का हरेक पल उसे याद रहा। उसने अपने माता-पिता की आज्ञा ली और फिर स्वामिनी का हाथ पकड़े वह मंदिर की ओर चल दी।
जैसे ही स्वामिनी ने मंदिर में प्रवेश किया,
घंटियां बजने लगीं जैसे उसी का स्वागत कर रही हों। जब वेनिल ने अपने पैर कुंड के ठंडे पानी में धोये और फिर मंदिर के अन्दर प्रवेश किया किसी ने उनसे सवाल नहीं पूछे। स्वामिनी मंदिर में एक रानी की तरह चल रहीं थीं और वेनिल उनके साथ थी।

वेनिल मंदिर में गहरे और गहरे चलती गई अचम्भे से तराशी हुई मूर्तियों को देखती और धूप व कपूर की महक को अंदर लेती हुई। पत्थर के फर्श पर उनके कदमों की आहट उसके कानों के लिये संगीत जैसी मधुर थी। वे गर्भगृह में पहुंचे जहां देवी की प्रतिमा स्पष्ट दिख रही थी। पहली बार, वेनिल के लिये उनकी मुखाकृति की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

जैसे स्वप्न में, उसने स्वामिनी को उस साड़ी को पुजारी को देते सुना। पुजारी ने तनिक भी विरोध प्रदर्शन के बिना स्वीकृति में सिर हिलाया। वह गर्भगृह में गया और उसने एक क्षण को प्रतिमा को परदे से ढक दिया जब तक वह उसे वस्त्र पहना रहा था। जब उसने वापस परदा हटाया, देवी वेनिल की खुद की लाल-हरी साड़ी पहने थीं। वहां जलती पवित्र ज्वाला में वस्त्र इस प्रकार नृत्य करती आभा दे रहा था, जैसे रेशम का बना हो।

देवी वेनिल की ओर स्वामिनी की आंखों से भी गहरी, काली और दयामय आंखों से देख रही थी। और वेनिल देख सकती थी कि वह मुस्कुरा रही थी।

अंग्रेजी से अनुवाद: विद्यानिधि और अंशुमाला